Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LV (55), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भारतीय ज्ञान प्रणाली में संघवाद विकेन्द्रीकृत शासन की परम्परा ऐतिहासिक निरन्तरता तथा चुनौतियाँ

अम्बिका गुप्ता*

* शोधार्थी, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन अध्ययनशाला, सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – भारतीय शासन-विचार को केवल औपनिवेशिक संस्थाओं अथवा पश्चिमी राजनीतिक प्रतिमानों की नकल के रूप में समझना ऐतिहासिक और वैचारिक रूप से अधूरा है। भारतीय ज्ञान-प्रणाली में धर्म, लोकाचार, कर्तव्य, समुदाय, सहमति, बहुलता और स्थानीय उत्तरदायित्व जैसे विचार विभिन्न धार्मिक, दार्शनिक, विधिक तथा सामाजिक परम्पराओं में विकसित हुए। इन परम्पराओं ने आधुनिक अर्थों में लोकतंत्र या संघवाद का कोई एकसमान, संवैधानिक मॉडल प्रस्तुत नहीं किया, फिर भी उन्होंने सत्ता को सामाजिक जीवन से जोड़ने, स्थानीय समुदायों को भूमिका देने और विविधता के भीतर व्यवस्था बनाए रखने के विचारों को पोषित किया। आधुनिक भारत में इन ऐतिहासिक संसाधनों का पुनर्संयोजन संविधान, पंचायती राज, ग्राम सभा और संघीय संस्थाओं के माध्यम से हुआ।

यह शोध-पत्र भारतीय ज्ञान-प्रणाली, विकेन्द्रीकरण और संघवाद के बीच सम्बन्ध का आलोचनात्मक अध्ययन करता है। इसका तर्क है कि भारतीय अनुभव में विकेन्द्रीकरण केवल प्रशासनिक अधिकारों का नीचे हस्तांतरण नहीं, बल्कि स्थानीय समाज, राज्य और नागरिक के बीच वैधता का पुनर्गठन है। संविधान का अनुच्छेद 40 ग्राम पंचायतों को स्वशासन की इकाइयों के रूप में विकसित करने का निर्देश देता है, जबकि 73वें संविधान संशोधन ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक आधार दिया। फिर भी वास्तविक सशक्तीकरण राज्यों में असमान है। अनेक स्थानों पर कार्य, वित्त और कर्मचारी पर्याप्त रूप से हस्तांतरित नहीं हुए ग्राम सभाओं में भागीदारी और सामाजिक उत्तरदायित्व भी कमजोर रहे। संघवाद के स्तर पर भारत ने विविधता और राष्ट्रीय एकता के बीच संतुलन बनाया, लेकिन राजनीतिक और प्रशासनिक केन्द्रीकरण ने सहकारी संघवाद की सीमाएँ स्पष्ट की हैं।स्पष्ट है भारतीय ज्ञान-प्रणाली को गौरव-कथा या अतीत की सरल पुनरावृत्ति के रूप में नहीं, बल्कि बहुलता, संवाद, उत्तरदायित्व और स्थानीय ज्ञान की आलोचनात्मक परम्परा के रूप में पढ़ना चाहिए। भविष्य के लिए ग्राम सभा को वास्तविक निर्णयकारी अधिकार, स्थानीय वित्तीय स्वायत्तता, सामाजिक समावेशन, राज्यों की संघीय स्वायत्तता, क्षमता निर्माण और डिजिटल पारदर्शिता आवश्यक हैं।

शब्द कुंजी –भारतीय ज्ञान-प्रणाली, विकेन्द्रीकरण, पंचायती राज, ग्राम सभा, संघवाद, स्वशासन।

प्रस्तावना – भारत का राजनीतिक इतिहास अनेक स्तरों पर संगठित सामाजिक जीवन का इतिहास है। परिवार, जाति, ग्राम, श्रेणी, मठ, धार्मिक समुदाय, क्षेत्रीय सत्ता और राजकीय संस्थाएँ एक-दूसरे से पृथक नहीं थीं वे परस्पर निर्भर व्यवस्थाओं के रूप में कार्य करती थीं। इस कारण भारतीय राज्य की समझ केवल केन्द्रीय राजसत्ता के अध्ययन से पूरी नहीं होती। स्थानीय रीति, सामुदायिक निर्णय, सामाजिक दायित्व और विधिक बहुलता भी शासन की संरचना का हिस्सा रहे हैं। संविधान में मौलिक अधिकारों और सार्वभौमिक नागरिकता के साथ-साथ सांस्कृतिक तथा सामाजिक विविधता के लिए स्थान, राज्यों की संवैधानिक भूमिका और ग्राम पंचायतों की कल्पना इसी जटिल निरन्तरता को दिखाते हैं।भारतीय ज्ञान-प्रणाली शब्द का प्रयोग आज प्राय: प्राचीन ग्रन्थों, दर्शन, आयुर्वेद, गणित, भाषा, कला और नैतिक विचारों के व्यापक समूह के लिए किया जाता है। शासन के सन्दर्भ में इसका अर्थ किसी एक शास्त्र को 'भारतीय राजनीति का मॉडल' घोषित करना नहीं होना चाहिए। ज्ञान-प्रणाली यहाँ उन अवधारणाओं, संस्थागत स्मृतियों और सामाजिक व्यवहारों का संकेत है जिनके माध्यम से समुदाय ने अधिकार, कर्तव्य, न्याय और सामूहिक जीवन को समझा। लोकतंत्र की भारतीय जड़ों पर हाल के अध्ययन का तर्क है कि प्राचीन और आरम्भिक मध्यकालीन परम्पराओं में भागीदारी, बहस और प्रतिनिधित्व के तत्व मौजूद थे, इसलिए लोकतंत्र को केवल पश्चिमी अवधारणा मानना उचित नहीं है[1], इस दावे को सावधानी से पढ़ना आवश्यक है। किसी सभा, परिषद या सामुदायिक संस्था की उपस्थिति अपने-आप आधुनिक समान नागरिकता, सार्वभौमिक मताधिकार या संवैधानिक लोकतंत्र सिद्ध नहीं करती। ऐतिहासिक संस्थाओं की सदस्यता अक्सर सीमित रही होगी और सामाजिक पदानुक्रम ने सहभागिता को असमान बनाया होगा। फिर भी, निर्णय को सामाजिक विमर्श, स्थानीय स्वीकृति और सामुदायिक दायित्व से जोड़ने की परम्पराएँ आधुनिक लोकतांत्रिक संस्थाओं के लिए वैचारिक संसाधन प्रदान कर सकती हैं।

इस शोध-पत्र का मुख्य प्रश्न हैभारतीय ज्ञान-प्रणाली और विकेन्द्रीकरण की ऐतिहासिक परम्पराएँ भारत के आधुनिक संघवाद और स्थानीय स्वशासन को किस प्रकार समझने में सहायता करती हैं? दूसरा प्रश्न यह है कि क्या सांस्कृतिक निरन्तरता संवैधानिक विकेन्द्रीकरण के वास्तविक परिणामों में दिखाई देती है? तर्क यह है कि निरन्तरता सीधी संस्थागत पुनरावृत्ति के रूप में नहीं, बल्कि बहुलता, स्थानीयता और सत्ता-

साझेदारी की राजनीतिक भाषा के रूप में दिखाई देती है। इसके साथ ही, जाति, पितृसत्ता, अभिजात नियन्त्रण, प्रशासनिक निर्भरता और वित्तीय असमानता यह दिखाते हैं कि परम्परा स्वत: लोकतांत्रिक या न्यायपूर्ण नहीं होती।इस लेख में विकेन्द्रीकरण को राजनीतिक, प्रशासनिक और वित्तीय आयामों में समझा गया है। राजनीतिक विकेन्द्रीकरण स्थानीय प्रतिनिधित्व और नागरिक भागीदारी है प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण कार्य, कर्मचारी और निर्णयाधिकार का हस्तांतरण तथा वित्तीय विकेन्द्रीकरण स्थानीय आय, अनुदान और व्यय पर अधिकार है। संघवाद को बहुस्तरीय शासन और राजनीतिक सौदेबाजी की व्यवस्था मानते हुए स्थानीय स्वशासन को नागरिकों और राज्य के बीच लोकतांत्रिक मध्यस्थता का आधार माना गया है।यह लेख साहित्य-आधारित वैचारिक और आलोचनात्मक अध्ययन है। इसमें भारतीय लोकतांत्रिक परम्पराओं, विधिक बहुलता, पंचायती राज, ग्राम सभा, वित्तीय विकेन्द्रीकरण और केन्द्र-राज्य सम्बन्धों पर उपलब्ध अकादमिक अध्ययनों का तुलनात्मक उपयोग किया गया है।

भारतीय ज्ञान-प्रणाली और स्थानीयता का विचार – भारतीय राजनीतिक विचार में शासन को समाज से पूर्णत: अलग, ऊपर स्थित और एकरूप शक्ति के रूप में देखना एकमात्र दृष्टि नहीं रही। स्थानीय रीति, सामुदायिक दायित्व और सामाजिक मान्यता ने नियमों की वैधता को प्रभावित किया। विधि और शासन के अध्ययन में यह बात सामने आती है कि भारत में कानूनी जीवन ऐतिहासिक रूप से बहुल रहा है और स्थानीय तथा सांस्कृतिक भिन्नताओं को पूरी तरह समाप्त करके एक समान व्यवस्था लागू करना कठिन रहा है[2] भारतीय विधिक अनुभव में सामान्य राज्य-कानून, व्यक्तिगत कानून, प्रथा और सामाजिक नैतिकता के बीच लगातार अन्त:क्रिया दिखाई देती है।यह बहुलता दो विरोधी सम्भावनाएँ रखती है। पहली सम्भावना यह है कि स्थानीय समुदाय अपनी परिस्थितियों के अनुरूप न्याय और शासन को अर्थ दें। इससे नियमों में सामाजिक स्वीकृति, लचीलापन और उत्तरदायित्व आ सकता है। दूसरी सम्भावना यह है कि स्थानीय सत्ता जाति, लिंग, धर्म या आर्थिक प्रभुत्व को स्थायी बना दे। इसलिए स्थानीयता को लोकतंत्र का पर्याय नहीं माना जा सकता। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण तभी न्यायपूर्ण होगा जब स्थानीय निर्णय संवैधानिक अधिकारों, समानता और सामाजिक सुरक्षा की सीमाओं के भीतर हों।बहुलता और एकरूपता के बीच यह तनाव भारतीय संविधान में भी मौजूद है। संविधान सामान्य कानून और विविध व्यक्तिगत तथा सांस्कृतिक व्यवस्थाओं के बीच एक प्रकार का समझौता है वह एकता को स्वीकार करता है, परन्तु भिन्नताओं को भी पूरी तरह मिटाता नहीं [2]। इस अनुभव से संघवाद के लिए एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त निकलता है राष्ट्रीय एकता का अर्थ प्रशासनिक और सांस्कृतिक एकरूपता नहीं है। साझा संवैधानिक मूल्यों के साथ क्षेत्रीय और स्थानीय विविधताओं के लिए संस्थागत स्थान आवश्यक है।

विकेन्द्रीकरण की ऐतिहासिक और संवैधानिक यात्रा – ग्राम-आधारित स्वशासन की कल्पना आधुनिक भारत में अनेक धाराओं से बनी। औपनिवेशिक प्रशासन ने स्थानीय संस्थाओं को सीमित प्रशासनिक साधन के रूप में देखा, जबकि राष्ट्रीय आन्दोलन में ग्राम स्वराज, स्वावलम्बन और नागरिक भागीदारी को अधिक व्यापक नैतिक-राजनीतिक अर्थ मिला। स्वतंत्रता के बाद संविधान के अनुच्छेद 40 ने राज्य को ग्राम पंचायतों का संगठन करने और उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने के लिए पर्याप्त शक्ति देने का निर्देश दिया। फिर भी कई दशकों तक पंचायतें राज्यों की राजनीतिक इच्छा और प्रशासनिक व्यवस्था पर निर्भर रहीं।अध्ययन के अनुसार, संवैधानिक संरक्षण और भूमिका की अस्पष्टता के कारण 1960 के दशक के अन्त तक अनेक क्षेत्रों में पंचायत व्यवस्था कमजोर हो गई थी बाद में समितियों और राज्य-स्तरीय प्रयोगों के बावजूद प्रगति असमान रही [3]। 73वें संविधान संशोधन ने इस स्थिति को बदलने का प्रयास किया। उसने पंचायतों के नियमित चुनाव, आरक्षण, राज्य निर्वाचन आयोग, राज्य वित्त आयोग और ग्यारहवीं अनुसूची में उल्लिखित विषयों के साथ एक संवैधानिक ढाँचा बनाया। इसका उद्देश्य पंचायतों को विकास कार्यक्रमों के एजेंट के बजाय स्वशासन की संस्थाओं के रूप में स्थापित करना था।परन्तु संवैधानिक सूची अपने-आप अधिकार हस्तांतरित नहीं करती। उपलब्ध अध्ययन में पाया गया कि राज्यों द्वारा 29 विषयों का हस्तांतरण बहुत असमान रहा एक समय पर केवल कुछ राज्यों और एक केन्द्रशासित प्रदेश ने सभी विषयों को औपचारिक रूप से पंचायतों को दिया था[3]। अनेक राज्यों में कार्यों की सूची तो दी गई, परन्तु उनके साथ पर्याप्त कर्मचारी, बजट और कार्यकारी अधिकार नहीं दिए गए[3]। इससे 'विकेन्द्रीकरण' का नाम बना रहता है, परन्तु निर्णयन की वास्तविक शक्ति ऊपर के स्तरों पर केन्द्रित रहती है।ग्राम सभा इस व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक घटक है। वह स्थानीय नागरिकों को योजना, निगरानी और सामाजिक उत्तरदायित्व में प्रत्यक्ष भूमिका दे सकती है। फिर भी विभिन्न राज्यों के अध्ययन में बैठकों में पर्याप्त कोरम का अभाव, नागरिकों में सूचना की कमी और सुझावों के गैर-बाध्यकारी रहने जैसी समस्याएँ मिलीं। कुछ राज्यों को छोड़कर ग्राम सभा के निर्णय ग्राम पंचायत पर प्रभावी रूप से बाध्यकारी नहीं थे [3]। इससे स्पष्ट है कि चुनावी प्रतिनिधित्व और सहभागी लोकतंत्र अलग-अलग संस्थागत प्रश्न हैं।

वित्तीय विकेन्द्रीकरण और स्थानीय उत्तरदायित्व – स्वशासन की सबसे ठोस परीक्षा वित्त में होती है। यदि स्थानीय निकाय अपने संसाधनों पर निर्णय नहीं ले सकते, तो वे राज्य या केन्द्र की योजनाओं के कार्यान्वयनकर्ता बन जाते हैं। ग्रामीण भारत पर एक अध्ययन में पाया गया कि अपने स्रोत से प्राप्त राजस्व और उच्चतर सरकारों से मिले अनुदान का स्थानीय व्यय-निर्णयों पर अलग प्रभाव पड़ता है। अध्ययन का निष्कर्ष था कि समान राशि के अनुदान की तुलना में कराधिकार का हस्तांतरण वांछित परिणाम प्राप्त करने में अधिक प्रभावी हो सकता है [4]। इसका कारण यह हो सकता है कि स्थानीय कराधिकार नागरिकों और पंचायत के बीच प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व पैदा करता है।इसके विपरीत, अनेक पंचायतें अनुदानों पर अत्यधिक निर्भर रहती हैं। पंचायत वित्त पर उपलब्ध विश्लेषण में अनेक राज्यों के चयनित ग्राम पंचायतों की अपनी आय बहुत कम पाई गईय अपेक्षाकृत बेहतर प्रदर्शन करने वाले राज्यों में भी अपनी आय कुल संसाधनों का सीमित हिस्सा थी[3]। जब स्थानीय संस्था का बजट ऊपर से आने वाले अनुदान, योजना-निर्देश और विभागीय स्वीकृति पर निर्भर हो, तब स्थानीय प्राथमिकताओं के अनुसार खर्च करना कठिन हो जाता है। इससे ग्राम सभा की चर्चा भी प्रतीकात्मक बन सकती है।वित्तीय विकेन्द्रीकरण केवल अधिक पैसा देने का प्रश्न नहीं है। इसमें कराधिकार, लेखांकन, पारदर्शिता, लेखा-परीक्षण और व्यय की प्राथमिकताओं पर स्थानीय निर्णय शामिल हैं। स्थानीय निकायों को बिना क्षमता के कराधिकार देना भी पर्याप्त नहीं होगाय उन्हें प्रशिक्षित कर्मचारी, सरल लेखा प्रणाली और नागरिक निगरानी चाहिए। इसी प्रकार केवल डिजिटल प्लेटफॉर्म से भ्रष्टाचार समाप्त नहीं होगा। डिजिटल पारदर्शिता तभी

उत्तरदायित्व बढ़ाएगी जब नागरिकों को सूचना पढ़ने, प्रश्न पूछने और निर्णय पर प्रभाव डालने का संस्थागत अधिकार हो।

भारतीय संघवाद और बहुस्तरीय शासन – भारतीय संघवाद ने क्षेत्रीय विविधता को राष्ट्रीय ढाँचे के भीतर समाहित करने का कार्य किया है। राज्यों को विधायी और प्रशासनिक भूमिका देकर संविधान ने केन्द्र की एकात्मक प्रवृत्तियों पर संस्थागत सीमा लगाई, यद्यपि भारत का संघवाद असममित और केन्द्र–प्रबल रहा है। यह संरचना ऐतिहासिक रूप से समझने योग्य हैरू विभाजन, राष्ट्रीय एकीकरण, भाषायी विविधता, सीमावर्ती क्षेत्र और आर्थिक असमानता ने मजबूत केन्द्र की आवश्यकता का तर्क दिया। लेकिन मजबूत केन्द्र और लोकतांत्रिक संघवाद के बीच संतुलन लगातार राजनीतिक वार्ता पर निर्भर रहता है।केन्द्र–राज्य सम्बन्धों पर एक अध्ययन ने राजनीतिक, वित्तीय और प्रशासनिक तीन आयामों में परिवर्तन का परीक्षण करते हुए निष्कर्ष दिया कि एक अवधि में राजनीतिक केन्द्रीकरण अधिक मजबूत हुआ, जबकि वित्तीय क्षेत्र में वित्त आयोग और वस्तु एवं सेवा कर से जुड़े अन्तर–सरकारी सहमति–तंत्रों ने कुछ सीमाएँ बनाए रखीं [5]। इससे संघवाद की मिश्रित प्रकृति सामने आती है। राजनीतिक बहुमत केन्द्र को अधिक प्रभावशाली बना सकता है, लेकिन संवैधानिक संस्थाएँ, राज्यों की आर्थिक भूमिका और साझा कर–व्यवस्था सहमति की आवश्यकता बनाए रखते हैं।सहकारी संघवाद का अर्थ यह नहीं कि केन्द्र और राज्य सदैव सहमत रहेंगे। इसका अर्थ है कि नीतियों के निर्माण, वित्त–वितरण और क्रियान्वयन में दोनों स्तरों की वैध भूमिका हो। प्रतिस्पर्धी संघवाद राज्यों को निवेश, सेवा–प्रदर्शन और नवाचार में प्रतिस्पर्धा करने देता है, परन्तु बहुत अधिक प्रतिस्पर्धा क्षेत्रीय असमानता को बढ़ा सकती है। इसलिए सहकारी और प्रतिस्पर्धी संघवाद के बीच वित्तीय समानता, सामाजिक अधिकार और संवैधानिक सुरक्षा का संतुलन आवश्यक है।स्थानीय निकायों को संघवाद के विश्लेषण में अक्सर गौण समझा जाता है। यह दृष्टि अपर्याप्त है। यदि राज्य स्वयं स्थानीय संस्थाओं को अधिकार नहीं देते, तो केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में विकेन्द्रीकरण की भाषा होने पर भी नागरिक स्तर पर सत्ता केन्द्रीकृत रहती है। स्वास्थ्य क्षेत्र के एक अध्ययन में कर्नाटक के ग्राम–स्तरीय प्रशासन का विश्लेषण करते हुए पाया गया कि राजनीतिक और कार्यक्रमगत विकेन्द्रीकरण के बीच समन्वय कमजोर थाय निरन्तर क्षमता–निर्माण उपयोगी हो सकता है, परन्तु व्यवस्था की संरचनात्मक समस्याओं का समाधान भी आवश्यक है [6]। इससे पता चलता है कि संघवाद की सफलता नीचे के प्रशासनिक सम्बन्धों पर निर्भर करती है।

पंचायती राज ने प्रतिनिधित्व का विस्तार किया है। आरक्षण ने अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिलाओं को स्थानीय संस्थाओं में प्रवेश का अवसर दिया। स्थानीय स्वशासन पर अध्ययन में पाया गया कि आरक्षण ने वंचित समूहों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को प्रशासन और उच्च जातियों के सामने ऐसी सार्वजनिक मान्यता दिलाई जो पहले उपलब्ध नहीं थी, यद्यपि महिलाओं की सक्रिय और स्वतन्त्र भागीदारी कई स्थानों पर सीमित रही [7]। महिलाओं के स्थानीय राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर उपलब्ध अध्ययन औपचारिक आरक्षण और वास्तविक नेतृत्व के बीच अन्तर की ओर संकेत करते हैं। पितृसत्तात्मक परिवार, आर्थिक निर्भरता, कम प्रशासनिक पहुँच और पुरुष रिश्तेदारों का हस्तक्षेप महिला प्रतिनिधियों की स्वायत्तता को सीमित कर सकता है ख्8,। आरक्षण को प्रशिक्षण, सुरक्षा, स्वतंत्र प्रशासनिक पहुँच, महिला ग्राम सभाओं, सामाजिक समर्थन और जवाबदेही से जोड़ना होगा।स्थानीय संस्थाओं में सामाजिक न्याय तभी साकार होगा जब ग्राम सभा और पंचायत के भीतर शक्ति–सन्तुलन बदले। भूमिहीन, दलित, आदिवासी, महिलाएँ और गरीब नागरिक केवल लाभार्थी नहीं, निर्णयकर्ता होने चाहिए।

निष्कर्ष – भारतीय ज्ञान–प्रणाली, विकेन्द्रीकरण और संघवाद के बीच सम्बन्ध को तीन प्रकार की निरन्तरता के रूप में समझा जा सकता है। पहली निरन्तरता बहुलता की है। प्राचीन और मध्यकालीन सामाजिक जीवन में नियम, समुदाय और पहचान अनेक स्तरों पर निर्मित हुएय आधुनिक संविधान ने इस बहुलता को नागरिक समानता और मौलिक अधिकारों के ढाँचे में पुनर्गठित किया।दूसरी निरन्तरता स्थानीय उत्तरदायित्व की है। ग्राम सभा, पंचायत और स्थानीय निकाय नागरिकों की आवश्यकताओं को प्रशासन के निकट ला सकते हैं। परन्तु यह तभी होगा जब स्थानीय संस्थाओं को निर्णयकारी कार्य, वित्त और कर्मचारी मिलें। वर्तमान अनुभव में संवैधानिक प्रावधान और वास्तविक अधिकार के बीच दूरी बनी हुई है[3]।तीसरी निरन्तरता सत्ता–साझेदारी की है। संघवाद केन्द्र, राज्यों और स्थानीय निकायों के बीच अधिकार बाँटता है। भारतीय राजनीतिक विचार में समुदाय, क्षेत्र और राज्य के बीच सम्बन्ध की जटिलता आधुनिक संघवाद को सामाजिक आधार देती है। परन्तु सत्ता–साझेदारी संघर्षरहित नहीं है। केन्द्र और राज्य, राज्य और स्थानीय निकाय, निर्वाचित प्रतिनिधि और नौकरशाही, तथा स्थानीय अभिजात और वंचित समूहकृसभी के बीच अधिकार का संघर्ष चलता है।भारतीय ज्ञान–प्रणाली को आधुनिक संस्थाओं को वैध ठहराने के लिए अतीत की पूर्णता का प्रमाण नहीं बनाया जा सकता। पुराने सामुदायिक ढाँचे जाति और लिंग आधारित बहिष्कार से मुक्त नहीं थे। इसलिए परम्परा को संविधान की समानता, स्वतंत्रता और न्याय के अधीन आलोचनात्मक संसाधन के रूप में लेना चाहिए।भारतीय ज्ञान–प्रणाली, विकेन्द्रीकरण और संघवाद के बीच सम्बन्ध सीधी ऐतिहासिक समानता का नहीं, बल्कि विचारों और संस्थाओं के पुनर्संयोजन का सम्बन्ध है। भारतीय परम्पराओं में स्थानीयता, सामाजिक दायित्व, संवाद और बहुलता के तत्व मिलते हैं। आधुनिक संविधान ने इन्हें सार्वभौमिक नागरिकता, अधिकार, प्रतिनिधित्व और न्याय के ढाँचे में पुनर्परिभाषित किया। पंचायती राज और ग्राम सभा इस प्रक्रिया के सबसे प्रत्यक्ष संस्थागत रूप हैं।फिर भी भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अधूरा है। 73वें संशोधन ने संस्थागत आधार बनाया, लेकिन कार्य, वित्त और कर्मचारियों का हस्तांतरण राज्यों में असमान है। ग्राम सभाओं की बैठकें, नागरिक जागरूकता और निर्णयों की बाध्यता कमजोर है। वित्तीय निर्भरता स्थानीय स्वायत्तता को सीमित करती है। महिलाओं और वंचित समूहों का प्रतिनिधित्व बढ़ा है, परन्तु औपचारिक पद को वास्तविक अधिकार में बदलने के लिए सामाजिक और प्रशासनिक समर्थन जरूरी है। संघीय स्तर पर भी राजनीतिक केन्द्रीकरण और साझा निर्णय–व्यवस्था के बीच तनाव बना रहता है।इसलिए भारतीय मॉडल को न तो पश्चिमी आयात और न ही प्राचीन स्वर्णयुग की पुनरावृत्ति कहा जा सकता है। यह बहुल सामाजिक इतिहास, औपनिवेशिक प्रशासन, राष्ट्रीय आन्दोलन, संवैधानिक निर्माण और समकालीन राजनीतिक संघर्षों से बना मिश्रित मॉडल है। इसकी लोकतांत्रिक गुणवत्ता इस बात पर निर्भर करेगी कि सत्ता कितनी वास्तविक रूप से नागरिकों के निकट जाती है और क्या स्थानीय तथा क्षेत्रीय विविधता समानता और अधिकारों के साथ जोड़ी जाती है।

सुझाव – राज्यों को पंचायतों को कार्य, वित्त और कर्मचारी स्पष्ट रूप से

देने चाहिए। प्रत्येक विषय के लिए अधिकार, बजट, उत्तरदायित्व और विभागीय समन्वय की लिखित रूपरेखा हो।ग्राम सभा की बैठकों का समय, सूचना और कार्यसूची सार्वजनिक हो। उसके अनुमोदन, सामाजिक लेखा–परीक्षण और योजना–प्राथमिकताओं को पंचायत और विभागों पर प्रभावी बनाया जाए।स्थानीय वित्तीय स्वायत्तता पंचायतों को उपयुक्त कराधिकार, नियमित और पूर्वानुमेय अनुदान तथा पारदर्शी राज्य वित्त आयोग दिए जाएँ।महिला, दलित और आदिवासी प्रतिनिधियों के लिए स्वतंत्र प्रशिक्षण, कानूनी सहायता, डिजिटल साक्षरता और सुरक्षित सार्वजनिक भागीदारी की व्यवस्था की जाए।निर्वाचित प्रतिनिधियों, पंचायत सचिवों और विभागीय कर्मचारियों के लिए निरन्तर प्रशिक्षण हो। स्वास्थ्य, शिक्षा, जल और आजीविका कार्यक्रमों में पंचायत तथा विभागीय अधिकारियों के बीच साझा योजना बनाई जाए।केन्द्र और राज्यों के बीच वित्त, योजनाओं और प्रशासन पर नियमित, पारदर्शी और सहमति–आधारित संस्थागत संवाद हो। राज्यों की स्वायत्तता और राष्ट्रीय न्यूनतम सामाजिक मानकों को साथ–साथ सुरक्षित किया जाए।भारतीय परम्पराओं का अध्ययन स्थानीय ज्ञान, बहुलता और सामाजिक उत्तरदायित्व के लिए किया जाए, पारम्परिक ज्ञान को संवैधानिक समानता, वैज्ञानिक विवेक और मानवाधिकारों के साथ जोड़ा जाए।ई–गवर्नेंस, खुला बजट, ऑनलाइन कार्य–प्रगति और शिकायत प्रणालियाँ विकसित की जाएँ।विकेन्द्रीकरण की सफलता तभी होगी जब परम्परा की सामाजिक स्मृति, संविधान की समानता और संघवाद की सत्ता–साझेदारी एक–दूसरे को मजबूत करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Datta, P. K. (2009). Democratic decentralization through Panchayati Raj in contemporary India: The changes and challenges. *heiDOK*. https://doi.org/10.11588/heidok.00009978
2. Govil, P. J. (2014). *Fiscal decentralization: Does the source of revenue matter?* CUNY Academic Works. https://academicworks.cuny.edu/gc_etds/45
3. Kuhn, B. (1997). *Participatory development and local self-government reform in rural India*. Refubium. https://doi.org/10.17169/refubium-24775
4. Menski, W. F. (2008). The uniform civil code debate in Indian law: New developments and changing agenda. *German Law Journal*. https://doi.org/10.1017/S2071832200006416
5. Pan, A., & Mukherjee, S. (2026). Position of women in Panchayati Raj Institutions (PRI): Examining gender discriminations in the district of Hooghly. *Neliti*.
6. Seshadri, S. R., & Kothai, K. (2019). Political and programmatic decentralization in India's health sector: Insights from Karnataka. *Working Paper Series*. https://doi.org/10.61933/wps.14.2019.11
7. Sharma, C. K., & Swenden, W. (2018). Modi-fying Indian federalism? Center-state relations under Modi's tenure as Prime Minister. *Indian Politics & Policy, 1*(1). https://doi.org/10.18278/inpp.1.1.4
8. Yadawa, S. K. (2025). Delineating the roots of democracy in Indian tradition. *The Indian Historical Review*. https://doi.org/10.1177/03769836251334003

****